॥ श्रीहरिः ॥ 315▲

चेतावनी और सामयिक चेतावनी

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

चेतावनी और सामयिक चेतावनी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—जयदयाल गोयन्दका—

॥ श्रीहरिः ॥

चेतावनी

शास्त्र और महापुरुष डंकेकी चोट चेतावनी देते आये हैं और दे रहे हैं। इसपर भी हमारे भाइयोंकी आँखें नहीं खुलतीं—यह बड़े आश्चर्यकी बात है। मनुष्यका शरीर सम्पूर्ण शरीरोंसे उत्तम और मुक्तिदायक होनेके कारण अमूल्य माना गया है। चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्यकी योनि, सारी पृथ्वीमें भारतभूमि और सारे धर्मोंमें वैदिक सनातन-धर्मको सर्वोत्तम बतलाते हैं। मनुष्यसे बढ़कर कोई योनि देखनेमें भी नहीं आती, अध्यात्म-विषयकी शिक्षा सारी पृथ्वीपर भारतसे ही गयी है यानी दुनियामें जितने प्रधान-प्रधान धर्मप्रचारक हुए हैं, उन्होंने अध्यात्म-विषयक धार्मिक शिक्षा प्रायः भारतसे ही पायी है। तथा यह वैदिक धर्म अनादि और सनातन है, सारे मत-मतान्तर एवं धर्मोंकी उत्पत्ति इसके बाद और इसके आधारपर ही हुई है। विधर्मी लोग भी इस वैदिक सनातन-धर्मको

अनादि न माननेपर भी सबसे पहलेका तो मानते ही हैं। अतएव युक्तिसे भी इन सबकी सबसे श्रेष्ठता सिद्ध होती है। ऐसे उत्तम देश, जाति और धर्मको पाकर भी जो लोग नहीं चेतते हैं, उनको बहुत ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

'वे लोग मृत्युके नजदीक आनेपर सिरको धुन-धुनकर दुःखित हृदयसे पश्चात्ताप करेंगे और कहेंगे कि कलिकाल रूप समयके प्रभावके कारण मैं कल्याणके लिये कुछ भी नहीं कर पाया, मेरे प्रारब्धमें ऐसा ही लिखा था; ईश्वरकी ऐसी ही मर्जी थी।' किंतु यह सब कहना उनकी भूल है; क्योंकि यह कलिकाल पापोंका खजाना होनेपर भी आत्मोद्धारके लिये परम सहायक है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥

(श्रीमद्भागवत १२। ३। ५१)

'हे राजन्! दोषके खजाने कलियुगमें एक ही यह महान् गुण है कि भगवान् श्रीकृष्णके कीर्तनसे ही आसक्तिरहित होकर मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।'

केवल भगवान्‌के पवित्र गुणगान करनेसे ही मनुष्य परमपदको प्राप्त हो जाता है। आत्मोद्धारके लिये साधन करनेमें प्रारब्ध भी बाधक नहीं है। इसलिये प्रारब्धको दोष देना व्यर्थ है और ईश्वरकी दयाका तो पार ही नहीं है—

आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

इसपर भी ईश्वरको दोष लगाना मूर्खता नहीं है तो और क्या है? आज यदि हम अपने कर्मोंके

अनुसार बंदर होते तो इधर-उधर वृक्षोंपर उछलते फिरते; पक्षी होते तो वनमें, शूकर-कूकर होते तो गाँवोंमें भटकते फिरते। इसके सिवा और क्या कर सकते थे? कुछ सोच-विचारकर देखिये—परम दयालु ईश्वरकी कितनी भारी दया है, ईश्वरने यह मनुष्यका शरीर देकर हमें बहुत विलक्षण मौका दिया है, ऐसे अवसरको पाकर हमलोगोंको नहीं चूकना चाहिये। पूर्वमें भी ईश्वरने हमलोगोंको ऐसा मौका कई बार दिया था, किन्तु हमलोग चेते नहीं; इसपर भी यह पुनः मौका दिया है। ऐसा मौका पाकर हमें सचेत होना चाहिये, क्योंकि महान् ऐश्वर्यशाली मान्धाता और युधिष्ठिर-सरीखे धर्मात्मा चक्रवर्ती राजा; हिरण्यकशिपु-जैसे दीर्घ आयुवाले रावण और कुम्भकर्ण-जैसे बली और प्रतापी दैत्य; वरुण, कुबेर और यमराज-जैसे लोकपाल और इन्द्र-जैसे देवताओंके भी राजा संसारमें उत्पन्न हो-होकर इस शरीर और ऐश्वर्यको यहीं त्यागकर चले गये; किसीके साथ कुछ भी नहीं गया। फिर विचार

करना चाहिये कि इन तन, धन, कुटुम्ब और ऐश्वर्य आदिके साथ अल्प आयुवाले हमलोगोंका तो सम्बन्ध ही कितना है।

फिर आपलोग मदिरा पीये हुए उन्मत्तकी भाँति इन सब बातोंको भुलाकर दुःखरूप संसारके अनित्य विषय-भोगोंमें एवं उनके साधनरूप धनसंग्रहमें तथा कुटुम्ब और शरीरके पालनमें ही केवल अपने इस अमूल्य मनुष्य-जीवनको किसलिये धूलमें मिला रहे हैं? इन सबसे न तो आपका पूर्वमें सम्बन्ध था और न भविष्यमें रहनेवाला ही है, फिर इन क्षण-स्थायी वस्तुओंकी उन्नतिको ही अपनी उन्नतिकी पराकाष्ठा आप क्यों मानने लगे हैं? यह जीवन अल्प है और मृत्यु हमारी बाट देख रही है; बिना खबर दिये ही अचानक पहुँचनेवाली है। अतएव जबतक इस देहमें प्राण है, वृद्धावस्था दूर है, आपका इसपर अधिकार है, तबतक ही जिस कामके लिये आये हैं, उस अपने कर्तव्यका शीघ्रातिशीघ्र पालन कर लेना चाहिये।

भर्तृहरिने भी कहा है कि—

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

(३। ७५)

'जबतक यह शरीररूपी घर स्वस्थ है, वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हुई है और आयुका भी (विशेष) क्षय नहीं हुआ है, तभीतक विद्वान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये, नहीं तो घरमें आग लग जानेपर कुआँ खोदनेका प्रयत्न करनेसे क्या होगा?

अतएव—

काल भजंता आज भज, आज भजंता अब।
पलमें परलय होयगी, बहुरि भजैगा कब॥

हमारे लिये वही परम कर्तव्य है, जिसका सम्पादन आजतक कभी नहीं किया गया। यदि इस

कर्तव्यका पालन पूर्वमें किया जाता तो आज हमलोगोंकी यह दशा नहीं होती। दुनियामें ऐसी कोई भी योनि नहीं होगी जो हमलोगोंको न मिली हो। चींटीसे लेकर देवराज इन्द्रकी योनितकको हमलोग भोग चुके हैं; किन्तु साधन न करनेके कारण हमलोग भटक रहे हैं और जबतक तत्पर होकर कल्याणके लिये साधन नहीं करेंगे तबतक भटकते ही रहेंगे। हजारों-लाखों ब्रह्मा हो-होकर चले गये और करोड़ों इन्द्र हो-होकर चले गये तथा हमलोगोंके इतने अनन्त जन्म हो चुके कि पृथ्वीके कणोंकी संख्या गिनी जा सकती है, किन्तु जन्मोंकी संख्या नहीं गिनी जा सकती। और भी चाहे लाखों, करोड़ों कल्प बीत जायँ, बिना साधनके परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती और बिना परमात्माकी प्राप्तिके भटकना मिट नहीं सकता। इसलिये उस सर्वव्यापी परम दयालु परमात्माके नाम और रूपका सदा-सर्वदा स्मरण और उसीकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। इसीसे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र और सुलभ

है (गीता ८।१४;१२।६-७)। इन साधनोंके लिये उन महापुरुषोंकी शरणमें जाना चाहिये, जिन पुरुषोंको परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी है, उन पुरुषोंके संग, सेवा और दयासे ही भगवान्‌के गुण और प्रभावको जानकर भगवान्‌में परम श्रद्धा और अनन्य प्रेम होकर भगवान्‌की प्राप्ति होती है। और जिन पुरुषोंपर प्रभुकी दया होती है, उन्हींपर महापुरुषोंकी दया होती है, क्योंकि—

जापर कृपा राम की होई।
तापर कृपा करै सब कोई॥

प्रभुकी दयासे महापुरुषोंका संग और सेवा करनेका अवसर मिलता है। यद्यपि प्रभुकी दया सबके ऊपर ही अपार है, किंतु हमलोग इस बातको अज्ञानके कारण समझते नहीं हैं, विषय-सुखमें भूले हुए हैं। इसलिये उस दयासे पूरा लाभ नहीं उठा सकते। जैसे किसीके घरमें पारस पड़ा है, पर वह उसके गुण, प्रभाव और रहस्यको न जाननेके कारण दरिद्रताके दुःखको भोगता है, उसी

प्रकार हमलोग भगवान् और भगवान्की दयाके रहस्य, प्रभाव, तत्त्व और गुणोंको न जाननेके कारण दुःखी हो रहे हैं।

अतएव इन सबको जाननेके लिये महापुरुषोंका संग, सेवा तथा प्रभुके नाम, रूप, गुण और चरित्रोंका ग्रन्थोंमें अध्ययन करके उनका कीर्तन और मनन करना चाहिये। क्योंकि यह नियम है कि कोई भी पदार्थ हो, उसके गुण और प्रभाव जाननेसे उसमें श्रद्धा-प्रेम और अवगुण जाननेसे घृणा होती है। और यह बात प्रसिद्ध है कि परमेश्वरके समान संसारमें न कोई गुणी है और न कोई प्रभावशाली। जिसके संकल्प करनेसे तथा नेत्रोंके खोलने और मूँदनेसे क्षणमें संसारकी उत्पत्ति और विनाश हो जाता है, जिसके प्रभावसे क्षणमें मच्छरके तुल्य जीव भी इन्द्रके समान और इन्द्रके तुल्य जीव मच्छरके समान हो जाते हैं, इतना ही क्यों, वह असम्भवको सम्भव और सम्भवको भी असम्भव कर सकता है; ऐसी कोई भी बात नहीं है जो उसके प्रभावसे न

हो सके। ऐसा प्रभावशाली होनेपर भी वह भजनेवालेकी कभी उपेक्षा नहीं करता, बल्कि भजनेवालेको स्वयं भी वैसा ही भजता है, इस रहस्यको किंचित् भी जाननेवाला पुरुष एक क्षणके लिये भी ऐसे प्रभुका वियोग कैसे सह सकता है?

जो परमेश्वर महापामर दीन-दुःखी अनाथको याचना करनेपर उसके दुर्गुण और दुराचारोंकी ओर खयाल न करके बच्चेको माताकी भाँति गले लगा लेता है, ऐसे उस परम दयालु सच्चे हितैषी परम पुरुषकी इस दयाके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष उसकी प्राप्तिसे वंचित कैसे रह सकता है?

उस परमात्मामें धैर्य, क्षमा, दया, त्याग, शान्ति, प्रेम, ज्ञान, समता, निर्भयता, वत्सलता, सरलता, कोमलता, मधुरता, सुहृदता आदि गुणोंका पार नहीं है और परमात्माके ये सब गुण उसको भजनेवालेमें स्वाभाविक ही आ जाते हैं—इस बातके मर्मको जाननेवाला पुरुष उसको छोड़कर एक क्षण भी दूसरेको नहीं भज सकता।

जो प्रेमका तत्त्व जानता है—साक्षात् प्रेम-स्वरूप है, जो महान् होकर भी अपने प्रेमी भक्त और सखाओंके साथ उनका अनुगमन करता है, ऐसे उस निरभिमानी, प्रेमी, दयालु भगवान्के तत्त्वको जाननेवाला पुरुष उसकी किसी भी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकता है?

इन सब भगवान्के गुण और प्रभावको जान लेनेपर तो बात ही क्या है, किन्तु ऐसे गुण और प्रभावशाली प्रभुके होनेमें विश्वास (श्रद्धा) होनेपर भी मनुष्यके द्वारा पापाचार तो हो ही नहीं सकता; बल्कि उसके प्रभाव और गुणोंको स्मरण कर-कर मनुष्यमें स्वाभाविक ही निर्भयता, प्रसन्नता और शान्ति आ जाती है। और पद-पदपर उसे आश्रय मिलता रहता है, जिससे उसके उत्साह और साधनकी वृद्धि होकर परमेश्वरकी प्राप्ति हो जाती है।

यदि ऐसा विश्वास न हो सके तो भी उसको अपने चित्तसे एक क्षण भी भुलाना तो नहीं चाहिये,

नहीं तो भारी विपत्तिका सामना करना पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य जिस-जिसका चिन्तन करता हुआ जाता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, इस प्रकार शास्त्र और महात्माओंने कहा है और यह युक्तिसंगत भी है। सोते समय मनुष्य जिस-जिस वस्तुका चिन्तन करता हुआ सोता है, स्वप्नमें भी प्रायः वही वस्तु उसे प्रत्यक्ष-सी दिखलायी देती है, इसी प्रकार मरणकालमें भी जिस-जिसका चिन्तन करता हुआ मनुष्य मरता है, आगे जाकर वह उसीको प्राप्त होता है अर्थात् जो भगवान्‌को चिन्तन करता हुआ जाता है, वह भगवान्‌को प्राप्त होता है और जो संसारका चिन्तन करता हुआ जाता है, वह संसारको प्राप्त होता है। यदि कहें कि अन्तकालमें ही भगवान्‌का चिन्तन कर लेंगे—तो ऐसा मानना भूल है। अन्तकालमें इन्द्रियाँ और मन कमजोर और व्याकुल हो जाते हैं, उस समय प्रायः पूर्वका अभ्यास ही काम आता है। इसलिये मनुष्य-जन्मको पाकर यह जोखिम तो

अपने सिरसे उतार ही देनी चाहिये, यानी और कुछ साधन न बन पड़े तो गुण और प्रभावके सहित नित्य-निरन्तर परमेश्वरका स्मरण तो करना ही चाहिये। इसमें न तो कुछ खर्च लगता है और न कुछ परिश्रम ही है, बल्कि यह साधन प्रत्यक्ष आनन्द और शान्तिदायक है तथा करनेमें भी बहुत सुगम है। केवल विश्वास-(श्रद्धा-) की ही आवश्यकता है। फिर तो अपने-आप सहज ही सब काम हो सकता है। परमात्मामें विश्वास होनेके लिये परमात्माके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, प्रेम और चरित्रकी बात महापुरुषोंसे श्रवण करके उसका मनन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे उन महापुरुष और परमात्माकी दयासे परमेश्वरमें विश्वास और परम प्रेम होकर उसकी प्राप्ति सहजमें ही हो सकती है। परन्तु शोककी बात है कि ईश्वर और परलोकपर विश्वास न रहनेके कारण हमलोग इस ओर खयाल न करके अपने अमूल्य जीवनको अपने आत्मोद्धाररूप

ऊँचे-से-ऊँचे काममें बिताना तो दूर रहा, नाशवान्, क्षणभंगुर सांसारिक विषय-भोगोंके भोगनेमें ही समाप्त कर देते हैं। सांसारिक पदार्थोंमें जो क्षणिक सुखकी प्रतीति होती है, वास्तवमें वह सुख नहीं है, धोखा है। यह बात विचार करनेसे समझमें आ सकती है। ईश्वरने हमलोगोंको बुद्धि और ज्ञान विवेकपूर्वक समय बितानेके लिये ही दिया है, अतएव जो भाई अपने जीवनको बिना विचारे बिताता है, वह अपनी अज्ञताका परिचय देता है। हर एक मनुष्यको यह विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? इसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? मैं क्या कर रहा हूँ? मुझे क्या करना चाहिये?

संसारके सारे प्राणी सुख चाहते हैं, वह सुख भी सदा-सर्वदा अपार चाहते हैं और दुःखको कोई किंचिन्मात्र भी कभी नहीं चाहता। किन्तु जैसा वे चाहते हैं, वैसा होता नहीं, बल्कि उनकी इच्छाके विपरीत ही होता है। क्योंकि वे अपने

समयको जैसा बिताना चाहिये मूर्खताके कारण वैसा नहीं बिताते।

संसारमें जो बड़े-बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् समझे जाते हैं, वे भी भौतिक यानी सांसारिक सुखको ही सुख मानकर उसकी प्राप्तिके लिये मोहके वशीभूत होकर टूट पड़ते हैं और उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करना ही उन्नति मानते हैं। बहुत-से लोग सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके साधनरूप रुपयोंको ही सर्वोपरि मानकर धनसंचय करना ही अपनी उन्नति मानते हैं और कितने ही लोकमें मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये अपनी ख्याति करना ही उन्नति मानते हैं। किन्तु यह सब मूर्खता है; क्योंकि ये सारी बातें अनित्य होनेके कारण इनमें भ्रमसे प्रतीत होनेवाला क्षणिक सुख भी अनित्य ही है। अनित्य होनेके कारण ही शास्त्रकारोंने इसे असत्य बतलाया है। शास्त्र और महापुरुषोंका यह सिद्धान्त है एवं युक्तिसंगत भी है। कोई भी पदार्थ हो जो सत् होगा, उसका किसी भी प्रकार कभी विनाश नहीं

होगा। उसपर कितनी ही चोटें लगें, वह सदा-सर्वदा अटल ही रहेगा। जो असत् पदार्थ है, उसके लिये आप कितना ही प्रयत्न करें, वह कभी रहनेका नहीं। इन सब बातोंको समझकर क्षणभंगुर—नाशवान् सुखसे अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको हटाना चाहिये और वास्तवमें जो सच्चा सुख है उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। उसकी प्राप्तिके मार्गमें अग्रसर हो जाना ही असली उन्नति है।

अब हमको यह विचार करना चाहिये कि सच्चा सुख क्या है और किसमें है? तथा मिथ्या सुख क्या है और किसमें है? सर्वशक्तिमान् विज्ञान-आनन्दघन परमात्मा ही नित्य वस्तु है, अतएव उस परमात्माके सम्बन्धसे होनेवाला सुख ही सत्य और नित्य सुख है। जो सांसारिक पदार्थ हैं, वे सब क्षणभंगुर और अनित्य होनेके कारण उनमें प्रतीत होनेवाला सुख क्षणिक और अनित्य है। अब यह विचार करें कि सांसारिक पदार्थ और उनमें प्रतीत होनेवाला सुख क्षणिक और अनित्य कैसे है?

देखिये, जैसे प्रातःकाल गायका दूध दुहकर तुरंत पान किया जाता है तो उसका स्वाद, गुण, रूप दूसरा ही होता है। और सायंकालतक पड़े रहनेपर कुछ दूसरा ही हो जाता है यानी प्रातःकाल-जैसा स्वाद और गुण उसमें नहीं रहता तथा रूप भी कुछ गाढ़ा हो जाता है। दूसरे और तीसरे दिन तो स्वाद, गुण और रूपकी तो बात ही क्या है, उसका नाम भी बदल जाता है अर्थात् कुछ क्रिया न करनेपर भी दूधका दही हो जाता है तथा मीठेका खट्टा, पित्त और वायुनाशककी जगह पित्त और वायुवर्धक एवं पतलेका अत्यन्त गाढ़ा हो जाता है। और दस दिनके बाद तो पड़ा-पड़ा स्वाभाविक ही विषके तुल्य स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकर हो जाता है। विचार करके देखिये, कुछ क्रिया न करनेपर भी अमृतके तुल्य दूध-जैसे पदार्थमें क्षणपरिणामी होनेके कारण पहलेवाले स्वाद, गुण, रूप और नामका अत्यन्त अभाव हो जाता है। यदि वह नित्य होता तो उसका परिवर्तन और विनाश नहीं होता। इसी

प्रकार अन्य सब पदार्थोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। अतएव इन सांसारिक पदार्थोंमें प्रतीत होनेवाला सुख वास्तवमें सुख नहीं है। यदि प्रतीत होनेवाले क्षणिक सुखको सुख माना जाय तो उससे बढ़कर उनमें दुःख भी है, इसलिये वे त्याज्य हैं। एक पुरुष रमणीके साथ रमण करता है, उस समय उसको क्षणिक सुख-सा प्रतीत होता है, पर आगे चलकर उससे रोगोंकी वृद्धि तथा बल, बुद्धि, तेज और आयुका क्षय होता है एवं वह महान् दुःखी होकर शीघ्र ही कालका ग्रास बन जाता है। उपर्युक्त कार्य धर्मसे विरुद्ध करनेपर तो इस लोकमें अपकीर्ति और मरनेपर नरककी भी प्राप्ति होती है। अब विचार करके देखिये कि क्षणिक सुखके बदलेमें कितने समयतक कितना दुःख भोगना पड़ता है। इसी प्रकार अन्य सब पदार्थोंके भोगमें भी समझना चाहिये; क्योंकि विषयोंके भोगमात्रसे ही शरीर और इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं और अन्तःकरण दूषित, दुर्बल और चंचल होता जाता है; पूर्वकृत

पुण्योंका क्षय और पापोंकी वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, धीर और वीर पुरुष भी विलासी बन जाते हैं तथा ईश्वरप्राप्तिके मार्गपर आरूढ़ नहीं हो सकते। कोई आरूढ़ होनेका प्रयत्न करते हैं तो भी उनको सफलता शीघ्र नहीं होती।

इसलिये इन पदार्थोंके भोगनेके उद्देश्यसे अर्थ-(धन-) को इकट्ठा करना भी भूल ही है— क्योंकि प्रथम तो इस अर्थ-(धन-) के उपार्जन करनेमें बहुत परिश्रम होता है। इतना ही नहीं, घोर नरकदायक पाप यानी अनेकों अनर्थ करने पड़ते हैं। फिर इसकी रक्षा करनेमें बहुत कठिनाई पड़ती है। कहीं-कहीं तो इसकी रक्षा करनेमें प्राणोंपर नौबत आ जाती है। इसके खर्च और दान करनेमें भी कम दुःख नहीं होता। लोग कहते हैं कि देना और मरना समान है। इसके नाश और वियोगमें और भी बड़ा भारी दुःख होता है। जब मनुष्य इसको छोड़कर परलोकमें जाता है, उस समय तो दुःखका पार ही नहीं है। अतएव क्षणिक सुखकी

प्राप्तिके लिये महान् दुःखका सामना करना मूर्खता नहीं तो और क्या है? फिर उस अर्थ-(धन-) के द्वारा प्राप्त होनेवाला विषयसुख भी इसके इच्छानुसार इसको नहीं मिल सकता। संसारमें बड़े-बड़े जो व्यावहारिक दृष्टिसे विद्वान् और बुद्धिमान् समझे जाते थे, वे सब इस धनको छोड़ सिर धुन-धुनकर पछताते हुए चले गये। बड़े-बड़े प्रतापी, प्रभावशाली, बलवान् पुरुष भी इसे साथ नहीं ले जा सके, फिर हमलोगोंकी तो बात ही क्या है? संसारमें यह भी देखा जाता है कि इसे इकट्ठा कोई करता है और उसका उपभोग प्रायः दूसरा ही करता है जो कि कहीं-कहीं तो उसके उद्देश्यसे बिलकुल ही विपरीत होता है। जैसे शहदकी मक्खी शहद इकट्ठा करती है, पर उसका उपभोग प्रायः दूसरे लोग ही करते हैं। यह उसकी मूर्खताका परिचय है। मक्खियाँ तो साधारण कीट हैं, किन्तु मनुष्य होकर भी जो इस विषयपर विचार नहीं करता, वह उन कीटोंसे भी बढ़कर है।

एक भाई रोज हजार रुपये कमाता है और आज हजार रुपयोंकी थैली उसके घरपर आ गयी, तो कलके लिये दो हजारकी चेष्टा करता है, पर थोड़ी देरके लिये समझ लीजिये कि कल उसकी मृत्यु होनेवाली है और यह बात स्पष्ट है कि मृत्यु होनेके बाद उसका इस धनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता और मृत्यु बिना खबर दिये ही अचानक आती है और सम्पूर्ण धनको खर्च कर देनेतक लाख प्रयत्न करनेपर भी किसी प्रकार मृत्युसे वह छूट नहीं सकता, उसकी मृत्यु अवश्यमेव है। ऐसी हालतमें जिन पढ़े-लिखे तथा प्रतिष्ठित टाइटल पाये हुए मनुष्योंका धनसंचय करना ही ध्येय है, उनकी शहद इकट्ठा करनेवाली मक्खियोंसे भी बढ़कर अज्ञता कही जाय तो इसमें क्या अत्युक्ति है?

जो नाम-ख्यातिके लिये तन, मन, धनको लगाते हैं, वे भी बुद्धिमान् नहीं हैं; क्योंकि नाम-ख्याति सच्चे सुखमें बाधक है और मरनेके बाद भी उस नाम-ख्यातिसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

अतएव उन धनी-मानी विषयासक्त भाइयोंसे सविनय निवेदन है कि एक परमेश्वर और उसके आज्ञापालनरूप धर्मके सिवा आपका इस लोक और परलोकमें कहीं भी कोई साथी तथा सहायक नहीं है। इसलिये यदि नाम-ख्यातिकी ही इच्छा हो तो भी भगवत्प्राप्तिकी ही चेष्टा करनी चाहिये। क्योंकि जब उस ब्रह्मको अभेदरूपसे प्राप्त हो जावेंगे यानी जब परमात्मा ही बन जावेंगे, तब तो वेद और शास्त्रोंमें जो विज्ञान-आनन्दघन ब्रह्मकी महिमा गायी है तथा भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णकी जो ख्याति है, वह सब तुम्हारी ही हो जायगी। इतना ही नहीं, दुनियामें जितनी भी ख्याति हो रही है और होगी, वह सब तुम्हारी ही है; क्योंकि जो पुरुष ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है, वह सबका आत्मा ही हो जाता है। इसलिये सबकी ख्याति ही उसकी ख्याति है और सबकी ख्याति भी उसके एक अंशमात्रमें ही स्थित है। गीतामें श्रीभगवान्‌ने कहा भी है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

(१०। ४१)

'जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान।'

अब विचार करना चाहिये कि फिर तुच्छ लौकिक ख्यातिकी इच्छा करना और उसके लिये अपना तन, मन, धन नष्ट करना कितनी मूर्खता है। वास्तवमें भगवान्की प्राप्ति अपनी ख्यातिके लिये नहीं करनी है, वह तो हमारा परम ध्येय और आश्रय होना चाहिये, क्योंकि उस पदको प्राप्त होनेपर और कुछ भी पाना बाकी नहीं रहता। इसीको मुक्ति, परमपद और सच्चे सुखकी प्राप्ति कहते हैं। जुगुनूका जैसे सूर्यके साथ तथा बूँदका जैसे समुद्रके साथ मुकाबला सम्भव नहीं, उसी प्रकार सारी दुनियाका सम्पूर्ण सुख मिलाकर भी उस विज्ञान-आनन्दघनकी प्राप्तिरूप सच्चे सुखके साथ उसका

मुकाबला नहीं किया जा सकता। भगवान् गीतामें कहते हैं—

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥

(२। ४६)

'सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त होनेपर छोटे जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्मको जाननेवाले ब्राह्मणका वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रहता है। अर्थात् जैसे बड़े जलाशयके प्राप्त हो जानेपर जलके लिये छोटे जलाशयोंकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होनेपर आनन्दके लिये वेदोंकी आवश्यकता नहीं रहती।'

जैसे स्वप्नमें प्राप्त हुए त्रिलोकीके राज्य-सुखका थोड़ेसे भी जाग्रत्‌के सुखके साथ मुकाबला नहीं किया जा सकता तथा यदि उस स्वप्नके राज्यको कोई बेचना चाहे तो एक पैसा भी उसका मूल्य नहीं मिलता; क्योंकि जागनेके बाद उस

स्वप्नके राज्यका कोई नाम-निशान ही नहीं है, वैसे ही परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद इस संसार और सांसारिक सुखका नाम-निशान भी नहीं रहता। अतएव ऐसे अनन्त सुखको छोड़कर जो क्षणभंगुर, नाशवान्, मिथ्या सुखके लिये चेष्टा करता है, उससे बढ़कर कौन मूर्ख है?

दूसरा जो प्रेममें मुग्ध होकर भेदरूपसे भगवान्की उपासना करता है उसकी तो और भी अद्भुत लीला है। वह स्वामीकी प्रसन्नतामें प्रसन्न और उनके सुखमें सुखी रहता है। स्वामीमें अनन्य प्रेम, नित्य संयोग और उनकी प्रसन्नताके लिये ही उस भक्तकी सारी चेष्टाएँ होती हैं। अपने प्रेमास्पद सगुण ब्रह्मपर तन, मन, धनको और अपने-आपको न्योछावर करके वह प्रेम और आनन्दमें मुग्ध हो जाता है। केवल एकमात्र भगवान् ही उसके परम आश्रय, जीवन, प्राण, धन और आत्मा हैं। इसलिये वह भक्त उनके वियोगको एक क्षण भी नहीं सह

सकता। उस प्यारे प्रेमीके नाम, रूप, गुण, प्रेम, प्रभाव, रहस्य और चरित्रोंका श्रवण, मनन और कीर्तन करता हुआ नित्य-निरन्तर उसमें रमण करता है।

इस आनन्दमें वह इतना मुग्ध हो जाता है कि ऊपरमें अभेदरूपसे बतलायी हुई परमगति यानी मुक्तिरूप सुखकी भी वह परवा नहीं करता। मछली जैसे जलके वियोगको नहीं सह सकती वैसे ही भगवान्‌का वियोग उसको अत्यन्त असह्य हो जाता है। इतना ही नहीं, भगवान्‌के मिलनेपर भगवान् जब उसको हृदयसे लगाते हैं, तब वस्त्रादिका व्यवधान भी उसको विघ्नरूप-सा प्रतीत होने लगता है। वह अव्यवधानरूपसे नित्य-निरन्तर मिलना ही पसंद करता है और एक क्षण भी भगवान्‌से अलग होना नहीं चाहता। इस प्रकार भगवत्प्राप्तिरूप आनन्दमें जो मग्न है, उसके गुणोंका वर्णन वाणीद्वारा शेष, महेश, गणेश आदि भी नहीं कर सकते, फिर अन्यकी तो बात ही क्या है? ऋषि, मुनि, महात्मा

और सारे वेद जिन परमेश्वरकी महिमाका गान कर रहे हैं, वे परमेश्वर स्वयं उस भक्तकी महिमा गाते हैं और उसके प्रेममें बिक जाते हैं तथा उस भक्तके भावके अनुसार भावित हुए उसके इच्छानुसार प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसके साथ रसमय क्रीडा करने लग जाते हैं यानी जिस प्रकारसे भक्तको प्रसन्नता हो वैसी ही लीला करने लगते हैं।

यदि कहा जाय कि भेद और अभेदरूपसे होनेवाली परमात्माकी प्राप्तिमें क्या अन्तर है तो इसका उत्तर यह है कि अभेदरूप परमात्माकी उपासना करनेवाला पुरुष तो स्वयं ही सच्चा सुख यानी विज्ञान-आनन्दघन परमात्मा ही हो जाता है और भेदरूपसे उपासना करनेवाला भक्त भिन्नरूपसे उस रसमय परमात्माके स्वरूपका दिव्य रस प्राप्त करता है यानी उस अमृतमय सगुणस्वरूप परमात्माके मिलनके आनन्दका अनुभव करता है।

यहाँतक तो वाणीकी पहुँच है। इसके बाद दोनों प्रकारके भक्तोंकी एक ही फलस्वरूपा

अनिर्वचनीय स्थिति होती है, जिसे वेद-शास्त्र, शिव-सनकादि, शारदा एवं साधु-महात्मा तथा इस स्थितिको प्राप्त होनेवाले भी कोई पुरुष किसी प्रकार नहीं बतला सकते। जो कुछ भी बतलाया जाता है, उस सबसे यह अत्यन्त परेकी बात है। क्योंकि यहाँ वाणीकी तो बात ही क्या है, मन और बुद्धिकी भी पहुँच नहीं है।

इसलिये दुःख और विघ्नरूप समझते हुए नाशवान्, क्षणभंगुर, तुच्छ भौतिक सुखको लात मारकर परमात्माकी प्राप्तिरूप सच्चे सुखके लिये ही कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार चेष्टा करनेवाले पुरुषको परमेश्वरकी दयासे उसकी प्राप्ति होनी सहज है।

□□

॥ श्रीहरि: ॥

सामयिक चेतावनी

बहुत गई थोरी रही, नारायन! अब चेत।
काल चिरैया चुग रही निसिदिन आयू खेत॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पलमें परलै होयगी, बहुरि करैगो कब॥
कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखौ आय॥
चलती चाकी देख कै दिया कबीरा रोय।
दो पाटन बिच आय कै साबित बचा न कोय॥
दो बातन कूँ याद रख, जो चाहै कल्यान।
नारायन एक मौतकूँ, दूजे श्रीभगवान॥

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

'तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।'

यह मनुष्य-जीवन क्षणभंगुर और दुःखरूप है। आज जिसे हम भला-चंगा और मोटा-ताजा देखते हैं, कल ही हम उसके बारेमें सुनते हैं कि अचानक उसके हृदयकी गति बंद हो गयी और उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। हम जीवनमें अनेक प्रकारके मनसूबे बाँधते हैं, जमीन-आसमानको एक करनेकी चेष्टा करते हैं; परन्तु मृत्युका निर्दय हाथ सहसा आकर हमारे मनके महलोंको ढहा देता है और हमारी सारी स्कीमें यों ही पड़ी रह जाती हैं। जीवनकी अपेक्षा मृत्यु ही अधिक निश्चित है। हम कितने दिन जीयेंगे, यह कोई नहीं बता सकता; परन्तु हमारी मृत्यु निश्चित है। जो जन्मा है, वह मरेगा अवश्य। किसी कविने कहा है—

नौ द्वारेका पींजरा, तामें पंछी पौन।
रहनेको आचरज है, गए अचंभा कौन॥

श्वास आया-आया, न आया। इसका कौन भरोसा है। जरा-सा बुखार आया, न्यूमोनिया हो गया, चलते बने। जरा-सा फोड़ा हुआ, उसमें जहर

पैदा हो गया और वह जहर सारे शरीरमें फैलकर हमारी मृत्युका कारण बन गया। बच्चोंसे लेकर बुड्ढोंतकका यही हाल है। बुड्ढे तो फिर भी रोगके आक्रमणको कुछ दिन सहते हुए देखे जाते हैं। आजकलके नौजवानोंकी तो यह हालत है कि दस दिन मियादी बुखार आया कि समाप्त। आये दिन ऐसी मौतें देखने और सुननेमें आती हैं, जिन्हें देख और सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दिल दहल उठता है। किसीका छः ही महीने पहले विवाह हुआ था, तो कोई अपने बुड्ढे माता-पिताका इकलौता लाल था, उनकी आँखोंका तारा था, उनके जीवनका एकमात्र सहारा था। फिर आजकल तो मृत्यु और भी सुलभ हो गयी है। कहीं बाढ़ आयी और गाँव-के-गाँव एक साथ बह गये। लोग सोये-के-सोये रह गये। एक भूकम्प आया और उससे नगर-का-नगर ध्वंस हो गया। शहरमें हैजा फैला, प्रतिदिन सैकड़ों आदमियोंका सफाया होने लगा। कभी रण-चण्डी भयानक रूप धारणकर लाखों मनुष्योंका संहार कर

रही है तो कभी प्रतिदिन हजारों नर-नारी भूखकी ज्वालासे तड़प-तड़पकर मर रहे हैं! जिसपर हम इतना नाज करते हैं, इतना इतराते हैं, जिसके बलपर हम किसीको कुछ नहीं समझते, पीढ़ियोंका प्रबन्ध करते हैं, हमारे उस जीवनका यह हाल है। फिर भी हम चेतते नहीं, क्षणिक विषय-सुखोंके पीछे इस अमूल्य जीवनको, जिसे शास्त्रोंने देवदुर्लभ बताया है, व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं। हमारा एक-एक श्वास इतना अमोल है कि उसे हम लाख रुपया देकर भी खरीद नहीं सकते। ऐसी अमूल्य निधिको हम आलस्य-प्रमाद, मौज-शौक, ऐश-आराम और भोग-विलासमें गँवा रहे हैं। मानो हीरेको कौड़ियोंके मोल बेच रहे हैं। इससे बढ़कर हमारी मूर्खता क्या होगी।

यह जीवन केवल अनित्य और क्षणभंगुर ही नहीं, दुःखरूप भी है। हम जिधर दृष्टि दौड़ाते हैं, उधर हमें दुःख-ही-दुःख नजर आता है। बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त दुःखका ही एकच्छत्र साम्राज्य है। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिने हमें चारों ओरसे

जकड़ रखा है। जन्ममें दुःख, मृत्युमें दुःख, जरामें दुःख और व्याधि तो दुःखरूप है ही। जन्मते ही, बल्कि यों कहिये कि माताके गर्भमें आते ही इस जीवको दुःख चारों ओरसे आ घेरते हैं। माताके उदरमें जबतक यह जीव रहता है, तबतक घोर कष्टका अनुभव करता रहता है। वह चारों ओर मांस-मज्जा, रुधिर-कफ और मल-मूत्र आदि दूषित एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंसे घिरा रहता है। हिल-डुल सकता नहीं। ऊपर टाँगें और नीचे सिर किये सिकुड़ा हुआ पड़ा रहता है। सुखपूर्वक साँस भी नहीं ले पाता। नाना प्रकारके कृमि और कीटाणु उसकी कोमल त्वचाको नोचते रहते हैं। माता यदि भूलसे कोई क्षारयुक्त अथवा दाहक पदार्थ खा लेती है तो उससे गर्भस्थ शिशुकी त्वचा जलने लगती है। वह चुपचाप इन सारे कष्टोंको सहता रहता है। उस समय उसकी कोई कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। फिर उसे पूर्वजन्मोंकी स्मृति जाग्रत् होकर अलग सताने लगती है। इस प्रकार वह अत्यन्त

दु:खी होकर अपने गर्भजीवनको व्यतीत करता है। गर्भसे बाहर निकलते समय भी उसे घोर यन्त्रणा होती है, वह चेतनाशून्य हो जाता है। उस समय कई बालक तो उस कष्टको न सह सकनेके कारण प्राण त्याग देते हैं। मृत्युके समयका दु:ख भी हम सब लोग बराबर देखते ही हैं। उस समय मनुष्यकी कैसी असहाय अवस्था हो जाती है! उसके रोम-रोमसे नैराश्य टपकने लगता है। वह कैसे कष्टसे प्राण त्यागता है। जिन घर-जमीन, स्त्री-पुत्र, धन-दौलतको उसने बड़ी ममतासे पाला-पोसा था, अपने जीवनसे भी बढ़कर समझा था और जिनकी रक्षाके लिये उसने नाना प्रकारके कष्ट सहे थे, लोक-परलोककी भी परवा नहीं की थी, जिनके पीछे उसने न जाने कितनोंका जी दुखाया था, कितनोंका हक मारा था, कितनोंसे वैर बाँधा था, कितनोंसे मुकदमेबाजी की थी, उन्हें सहसा बाध्य होकर त्यागनेमें उसे कितने महान् कष्टका अनुभव होता है—इसे मरनेवाला ही जानता है। हम सबने

अपने पूर्वजन्मोंमें इस कष्टका अनुभव किया है और इस जीवनका अन्त होनेपर हममेंसे अधिकांशको फिर करना होगा। बुढ़ापेके दुःख भी हमसे छिपे नहीं हैं। वृद्धावस्थामें मनुष्यकी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, दृष्टि मन्द हो जाती है, कानोंसे ठीक तरह सुनायी नहीं देता, चमड़ी सिकुड़ जाती है, दाँत जवाब दे देते हैं, बिना सहारेके चलना कठिन हो जाता है, घरके लोग अनादर करने लगते हैं, बुद्धि भी सठिया जाती है और नाना प्रकारकी चिन्ताएँ आ घेरती हैं। व्याधिका तो किसी-न-किसी रूपमें थोड़ा-बहुत हम सभीको अनुभव है। हमारे शास्त्रकारोंने इस शरीरको व्याधियोंका घर ही बताया है—'**शरीरं व्याधिमन्दिरम्।**' भगवदवतारों और कारक पुरुषोंको छोड़कर प्रायः सभीको न्यूनाधिक रूपमें व्याधियोंका शिकार होना पड़ता है। बड़े-बड़े महात्माओं और लोकोपकारी व्यक्तियोंका भी व्याधियोंसे पिण्ड नहीं छूटता। स्वस्थ-से-स्वस्थ और बलवान्-से-बलवान् मनुष्यको भी इनके आगे सिर झुकाना पड़ता है। इस

प्रकार हम देखते हैं कि जीवनमें चारों ओर दुःखका ही बोलबाला है। जिसे हम सुख कहते हैं, वह भी दुःख-मिश्रित, परिणाममें दुःखदायी और वास्तवमें दुःखरूप ही है।* वियोग तो सबके साथ लगा ही हुआ है। जिस वस्तुके समागमसे हमें सुखकी

---

* महर्षि पतंजलि कहते हैं—

'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।'

(१) प्रत्येक सुखका परिणाम दुःखदायी होता है। (२) इसके अतिरिक्त प्रत्येक सुखमें तारतम्य तो होता ही है। ऐसी दशामें थोड़े सुखवालेको दूसरेका अधिक सुख देखकर स्वाभाविक ही ईर्ष्या होती है और ईर्ष्या दुःखरूप ही है। (३) इतना ही नहीं, जो सुख प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है, उसकी स्मृति बड़ी दुःखदायिनी होती है—उसे याद कर-करके मनुष्य बड़ा दुःखी हो जाता है। (४) फिर कोई भी सुख-दुःखसे रहित नहीं होता, प्रत्येकमें दुःखका मिश्रण अवश्य होता है। (५) इसके सिवा सुखी मनुष्य भी सात्त्विक, राजस एवं तामस वृत्तियोंके संघर्षसे दुःखी रहता है। इन पाँच कारणोंसे विवेकी पुरुष सब कुछ दुःखमय ही देखते हैं।

अनुभूति होती है, वही वियोग होनेपर दुःखका कारण बन जाती है। स्त्री-पुत्र, धन-मान, पद-प्रतिष्ठा, ऐश-आराम—सबका यही हाल है। एक धनको ही ले लीजिये। धनके उपार्जनमें कष्ट होता है, उसकी रक्षा करनेमें कष्ट उठाना पड़ता है, उसके बढ़ानेमें भी कष्टोंका सामना करना पड़ता है, उसे अनिच्छापूर्वक त्यागनेमें—खर्च करनेमें भी कष्ट होता है और उसके नाश होनेमें—चले जानेमें तो कष्ट होता ही है। यदि राजा उसे छीन ले—दण्ड अथवा करके रूपमें ले ले, चोर चुरा ले जाय, अग्नि जला दे, पानी बहा ले जाय अथवा उसे सुरक्षित दशामें छोड़कर हमींको इस संसारसे विदा होना पड़े—प्रत्येक स्थितिमें हमें महान् दुःख होगा।

अब प्रश्न यह होता है कि इस दुःखसे बचनेका उपाय क्या है? शास्त्र कहते हैं कि स्वेच्छापूर्वक विषयोंके त्यागमें ही सुख है। भोग-बुद्धिसे विषयोंका संग्रह दुःखका मूल है। हमलोगोंने भ्रमसे विषयोंमें सुख मान रखा है। वास्तवमें जिसके

पास जितना अधिक विषयोंका संग्रह है, वह उतना ही दु:खी है और जो जितना अपरिग्रही है, वह उतना ही सुखी है। धनकी तीन गतियाँ मानी गयी हैं— दान, भोग और नाश। हमारे शास्त्रोंने दानको ही सर्वोत्तम गति माना है, यही धनका सर्वश्रेष्ठ सत्य उपयोग है। धनकी रक्षाका भी सर्वोत्तम उपाय दान ही है। वही धन सुरक्षित है, जिसे हम दूसरोंकी सेवामें, भगवान्‌की सेवामें लगा देते हैं। धनका नाश एक-न-एक दिन अवश्यम्भावी है—चाहे उसे हम भोगोंके निमित्त खर्च करके नष्ट कर दें, चाहे उसे दूसरे हड़प जायँ, सरकार करके रूपमें ले ले अथवा हम ही उसे छोड़कर संसारसे चल बसें। हर हालतमें हमारा उससे वियोग होगा ही। उसे अक्षय बनानेका— स्थायी बनानेका एकमात्र उपाय उसे भगवान्‌की सेवामें—जनता-जनार्दनकी सेवामें अथवा दरिद्र-नारायणकी सेवामें लगाना ही है। सच्ची बात तो यह है कि हमारा सारा धन भगवान्‌का है। लक्ष्मीदेवी— जो धनकी अधिष्ठात्री देवी हैं—उनकी अर्द्धांगिनी

हैं, चरण-सेविका हैं, उन्हें सबसे अधिक सुख भगवान्‌के चरण-प्रान्तमें ही मिलता है। इसीलिये वे भगवान्‌के चरणोंको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहतीं, उन्हींसे सर्वदा लिपटी रहती हैं। ऐसी दशामें प्रत्येक लक्ष्मीपात्रका कर्तव्य है कि वह उन्हें माता समझकर भगवान्‌के चरणोंमें ही नियुक्त कर दे और उनके प्रसादरूपमें ही विषयोंका शरीर-निर्वाहमात्रकी दृष्टिसे सेवन करे। भगवान्‌की वस्तुका भगवान्‌की सेवामें विनियोग न करके जो उसे केवल अपने कामोपभोगमें लेता है, वह तो अपराधी है, दण्डका पात्र है। पंच महायज्ञका भी अभिप्राय यही है। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(३। १३)

'यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। और जो पापीलोग अपना शरीर पोषण करनेके लिये ही

अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।' आगे चलकर ऐसे लोगोंको भगवान्‌ने अघायु—पापजीवी कहा है और उनका संसारमें जीना व्यर्थ बताया है—'**अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति**' (३। १६)। श्रुति भगवती भी कहती है—'**केवलाघी भवति केवलादी।**'

परन्तु यदि ऐसा न हो सके—हम सब कुछ भगवान्‌का न समझ सकें तो फिर कम-से-कम अपनी आयका—अपनी सम्पत्तिका षष्ठांश तो अवश्य ही भगवान्‌की सेवामें—धर्मकार्योंमें लगायें। यह हमारे ही किये हो सकता है। धर्मको शास्त्रोंने पंगु बताया है—वह हमारे चलाये ही चल सकता है। राजाकी तरह वह हमसे बलपूर्वक कर वसूल नहीं करता। हमें चाहिये कि जो हम भोगोंके निमित्त धनको पानीकी तरह बहाते हैं, ब्याह-शादियोंमें तथा अन्य सामाजिक कार्योंमें अनाप-शनाप खर्च करते हैं, कीर्तिके लिये अथवा उपाधि आदिके रूपमें सरकारकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये बड़ी-बड़ी

रकमें चंदेके रूपमें देते हैं तथा सरकारी अफसरोंको बड़ी-बड़ी पार्टियाँ देते हैं, ऐसा न करके अपनी आयका अथवा सम्पत्तिका कम-से-कम षष्ठांश लोकोपकारके कार्योंमें लगायें, अपने कारबारके कई विभागोंमेंसे एक विभागको अथवा एक ही विभाग हो तो उसके एक हिस्सेको लोकसेवक ट्रस्टके रूपमें परिवर्तित कर दें, ताकि उसकी सारी-की-सारी आय लोकोपकारके कार्योंमें खर्च की जा सके और उसपर हमारा निजी स्वत्व बिलकुल न रहे। कहना न होगा कि उपर्युक्त कार्योंके निमित्त धन व्यय करनेमें सरकार भी हमें प्रोत्साहन देती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि धार्मिक एवं लोकोपकारके कोषोंपर सरकारकी ओरसे 'इन्कम-टैक्स' आदि किसी प्रकारका कर नहीं लिया जाता। आजकल 'इन्कम-टैक्स' आदि करसे बचनेके लिये हमारे बहुत-से व्यापारी भाई झूठ-कपटका आश्रय लेते देखे जाते हैं। इस प्रकार अन्यायसे लाखों रुपयोंकी जो बचत की जाती है,

वैसा न करके लोकोपकारार्थ ट्रस्ट बनाकर उस धनको लोकोपकारमें ही खर्च करें। अपने निजी कार्यमें कतई नहीं। इस प्रकार लोकोपकारके कार्योंमें जो कुछ व्यय किया जायगा, वह अक्षय हो जायगा। हम भोग-बुद्धिसे जो कुछ बटोरते हैं, वह तो हमारे मरनेके बाद यहीं पड़ा रह जायगा, उसमेंसे एक पाई भी हमारे साथ नहीं जा सकेगी, एक सूईपर भी हमारा अधिकार नहीं रह जायगा। किन्तु धर्मके लिये हम जो कुछ भी खर्च करेंगे, वह परलोकमें भी हमें प्राप्त होगा। यदि हम किसी फलकी कामनासे ऐसा करेंगे, तो मरनेके बाद हमें स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होगी—जहाँके सुख यहाँके सुखोंकी अपेक्षा कई गुने अधिक हैं। और यदि भगवत्सेवाकी भावनासे—भगवदर्थ अथवा भगवदर्पण-बुद्धिसे या निष्कामभावसे हम लोकोपकारी कार्योंमें धन व्यय करेंगे तो वही हमारे कल्याणका परम साधन बन जायगा—हम जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये छूटकर भगवान्‌में विलीन हो जायँगे, अथवा भगवान्‌के

परमधाममें चले जायँगे, जहाँ अक्षय सुखका निवास है और दुःखका लेश भी नहीं है। भगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—'**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**' (२। ४०) धर्मके निमित्त जो कुछ निष्कामभावसे व्यय किया जाता है, उसकी बीमा हो जाती है—उसे चोर चुरा नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते, राजा छीन नहीं सकता और अन्यायी हड़प नहीं सकता। परन्तु हम अज्ञानी जीव चोरी, डाका, राजदण्ड, अग्नि आदिका उपद्रव—सब कुछ सह लेते हैं, पर स्वेच्छासे धर्मका दण्ड स्वीकार नहीं करते। किसीने कहा है—

अगिन पलीता राजदँड, चोर मूस धन खाय।
इतना तो दँड नर सहै, हरिदँड सहा न जाय॥

दानके लिये यों तो अनेकों मार्ग हैं; परन्तु इस समय सबसे अधिक आवश्यकता हमारे इस देशमें भूखोंको अन्न, वस्त्रहीनोंको वस्त्र तथा रोगियोंको औषध देनेकी, जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको गीता-रामायण आदि सद्ग्रन्थोंके

वितरणद्वारा सहायता करनेकी तथा चारा आदिके द्वारा गौओंकी रक्षा करनेकी है। आज देशके कई भागोंमें अन्नका बड़ा भारी कष्ट दिखायी दे रहा है। अन्नके बिना हाहाकार मचा हुआ है, प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें हमारे नेत्रोंके सामने हमारे ही-जैसे हमारे बहिन-भाई और बच्चे भूखके मारे बेमौत मर रहे हैं। कहीं सियार और कुत्ते उन्हें जीते-जी नोचते सुने जाते हैं और वे उनसे अपनी रक्षा नहीं कर पाते। भूखकी भयानक यन्त्रणासे बचनेके लिये लोग फाँसी लगाकर तथा रेलकी पटरियोंपर लेटकर प्राण देते देखे-सुने जाते हैं। माताएँ अपने बच्चोंको त्याग देती हैं। कई जगह लोग भूखसे पीड़ित होकर अपनी वयस्क कन्याओंको बेच रहे हैं। कलकत्ते आदि नगरोंमें लोग सड़कोंपर पड़े कराहते नजर आते हैं। निर्बलताके कारण वे विशेष हिल-डुल भी नहीं सकते। यह करुण दृश्य देखकर पत्थरका हृदय भी पसीज जाता है। हमारी माता और बहिनोंके पास लज्जा ढकनेके लिये वस्त्र भी

नहीं है और भूखसे निर्बल नर-नारी नाना प्रकारके रोगोंके शिकार हो रहे हैं। इस समय हमारे धनी भाइयोंका सबसे बड़ा कर्तव्य है खुले हाथों अपने दु:खी गरीब भाइयोंकी सहायता करना, उन्हें मौतके मुँहसे बचाना, अन्नहीनोंके लिये अन्नकी, वस्त्रहीनोंके लिये वस्त्रकी, रोगियोंके लिये औषधकी तथा विद्यार्थियोंके लिये विद्याकी व्यवस्था करना तथा जो लोग दान न लेना चाहें उनके लिये सस्ते अनाजकी दूकानें खोलना।

गो-जातिपर भी इस समय हमारे देशमें बड़ा संकट है। प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें हमारे देशकी दूध देनेवाली जवान गायें, बछिया तथा बैल हमारे ही सामने कटते हैं और हम अपनी आँखों यह सब देखकर भी इसका कुछ भी प्रतिकार नहीं कर रहे हैं। बहुत-सी गायें तो चारे आदिके अभावसे मर रही हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम उनके लिये चारे आदिकी समुचित व्यवस्था करें और इस प्रकार उनके बढ़ते हुए ह्रासको रोकनेकी चेष्टा करें।

गो-धन हमारा सबसे बड़ा धन है—उससे हमारा धर्म-कर्म सब कुछ चलता है तथा हमारे शरीरोंका पोषण होता है। गाय और बैलोंके बिना हमारा जीवन ही कठिन हो जायगा। ऐसी दशामें प्रत्येक भारतवासीका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह गौओंकी रक्षाके लिये तन, मन और धनसे भी कटिबद्ध हो जाय। प्रत्येक भारतीय गृहस्थको चाहिये कि वह कष्ट सहकर भी कम-से-कम एक गौ अपने घरमें अवश्य रखे। जिस समय भारतमें गौओंकी अधिकता थी, उस समय हमारा यह भारतवर्ष सुख-समृद्धिसे पूर्ण था। यहाँ दूध-दहीकी नदियाँ-सी बहती थीं। जिस मक्खन और घीके आज हमलोगोंको दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं, उसे भगवान् श्रीकृष्ण तो बाल्यावस्थामें बंदरोंको भी लुटाते थे। अकेले नन्दबाबाके यहाँ नौ लाख गायें थीं और एक-एक राजा लाख-लाख गायोंका दान कर देते थे। आज हमारे गो-धनका जो भयंकर ह्रास दृष्टिगोचर हो रहा है, वह हमारे ही प्रमादका दुष्परिणाम है। हमें चाहिये कि अब भी

चेतें और इस लुटते हुए धनको बचानेकी चेष्टा करें।

प्राचीन समयमें लोग गो-रक्षाके लिये बड़े-बड़े कष्ट सहनेके लिये तैयार रहते थे, गौके प्राण बचानेके लिये अपने प्राणोंकी भी आहुति देनेमें नहीं हिचकते थे। महाराज दिलीपकी गो-भक्ति और अर्जुनके गो-रक्षा-व्रत इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। राजा दिलीप चक्रवर्ती सम्राट् थे। गुरु वसिष्ठकी आज्ञासे उन्होंने उनकी गौ नन्दिनीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया। इतने बड़े सम्राट् होनेपर भी उन्हें गो-सेवा करनेमें लज्जा नहीं आयी। वे स्वयं उसे चरानेके लिये जंगलमें ले जाते और इष्टदेवीकी भाँति उसकी सेवामें दत्तचित्त रहते। वे उसके बैठनेपर बैठते, खड़े होनेपर स्वयं खड़े हो जाते, उसके भरपेट चर लेनेपर ही स्वयं अपनी भूख शान्त करते और उसको जल पिलाकर ही स्वयं जल ग्रहण करते। एक दिन नन्दिनी हरी-भरी घासोंसे सुशोभित हिमालयकी कन्दरामें प्रवेश

कर गयी। उस समय उसके हृदयमें तनिक भी भय नहीं था। राजा दिलीप हिमालयके सुन्दर शिखरकी शोभा निहार रहे थे। इतनेमें ही एक सिंहने आकर नन्दिनीको बलपूर्वक धर दबाया। राजाको उस सिंहके आनेकी आहटतक नहीं मालूम हुई। सिंहके चंगुलमें फँसकर नन्दिनीने दयनीय स्वरमें बड़े जोरसे चीत्कार किया। राजाने सहसा पर्वतकी ओरसे दृष्टि हटाकर गौके चिल्लानेका कारण जानना चाहा। उन्होंने देखा, एक भयंकर सिंह गौपर झपट रहा है और वह उससे भयभीत होकर चिल्ला रही है। राजाने तुरंत अपना धनुष उठाया और उसपर बाणका संधान करके उसे सिंहपर छोड़ दिया। परन्तु सिंहपर राजाके बाणका कुछ भी असर नहीं हुआ। उन्होंने जितने बाण सिंहपर छोड़े, वे सब-के-सब खाली गये। जब राजाने देखा कि और किसी उपायसे गौकी रक्षा होनी कठिन है, तब वे स्वयं जाकर सिंहके सामने पड़ गये और उससे कहने लगे कि 'तू इस गायको छोड़ दे

और इसके बदलेमें मेरे मांससे अपनी भूख शान्त कर ले।' वह सिंह और कोई नहीं था, नन्दिनीकी माया थी। राजाकी परीक्षाके लिये ही उसने यह माया रची थी। राजाके इस अनुपम त्यागको देखकर नन्दिनी प्रसन्न हो गयी। थोड़ी देरके बाद राजाने देखा कि कहीं कुछ नहीं है, अकेली नन्दिनी मौजसे घास चर रही है।

अर्जुनके गोरक्षा-व्रतकी बात भी प्रसिद्ध ही है। देवी द्रौपदीके सम्बन्धमें देवर्षि नारदके उपदेशसे पाण्डवोंमें परस्पर यह तय हो गया था कि द्रौपदी पारी-पारीसे पाँचों भाइयोंके पास रहेंगी और जिस समय वे एक भाईके पास एकान्तमें होंगी, उस समय कोई दूसरा भाई यदि उनके कमरेमें चला जायगा तो उसे बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यपूर्वक वनमें रहना होगा। एक समयकी बात है, कुछ लुटेरे एक ब्राह्मणकी गौको चुराकर लिये जा रहे थे। ब्राह्मणने आकर अर्जुनके सामने पुकार की। अर्जुनके धनुष-बाण उस समय महाराज युधिष्ठिरके कमरेमें थे, जो

उस समय देवी द्रौपदीके साथ एकान्तमें थे। अर्जुन धर्म-संकटमें पड़ गये। यदि वे शस्त्र लेने युधिष्ठिरके कमरेमें जाते हैं तो नियम-भंग होता है, जिसके दण्डस्वरूप उन्हें बारह वर्षका वनवास भोगना पड़ता है; और यदि वे अपने धनुष-बाण नहीं लाते तो ब्राह्मणकी गौकी रक्षा नहीं हो सकती। अन्तमें उन्होंने दोनों पक्षोंके बलाबलका विचार करके यही निश्चय किया कि नियम-भंगके लिये कठोर-से-कठोर दण्ड भोगकर भी मुझे गौकी रक्षा हर हालतमें करनी चाहिये। यह निश्चय करके वे चुपचाप महाराज युधिष्ठिरके कमरेमें चले गये और अपने धनुष-बाणको ले आये। ब्राह्मणकी गौको डाकुओंके हाथसे छुड़ाकर ब्राह्मणके सुपुर्द कर दिया और फिर सीधे महाराज युधिष्ठिरके पास आकर उनसे नियम-भंगके दण्डरूपमें बारह वर्षतक वनमें रहनेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा ही नहीं माँगी, युधिष्ठिरके समझानेपर भी न रुके और वनवासके लिये चल दिये तथा इस प्रकार अपने लिये कठोर दण्ड

स्वीकार करके भी अपने गोरक्षा-व्रतको निबाहा। जिन दिनों हम भारतवासी गौ-माताके लिये इस प्रकार प्राण देने और घोर-से-घोर कष्ट उठानेके लिये तैयार रहते थे, उन्हीं दिनों हम अपनेको सच्चा गोरक्षक कह सकते थे। आजकल तो हमलोग गो-रक्षाका खाली दम भरते हैं।

गो-रक्षाके लिये यह आवश्यक है कि हमलोग गौओंके प्रति अपने कर्तव्यको समझें, उनके लिये चारा सुगमतासे मिल सके—इसके लिये अधिक-से-अधिक गोचरभूमि छुड़वानेका प्रयत्न करें, गौएँ, बछड़े और बैल कसाइयोंके हाथोंमें तथा बूचड़खानोंमें न जाने पावें—इसके लिये प्राणपणसे चेष्टा करें, गौओंके पालन-पोषण तथा आरामका अधिक-से-अधिक ध्यान रखें, बूढ़ी तथा ठाठ गायोंकी तथा बछड़ोंकी रक्षाका भी समुचित प्रबन्ध करें एवं गौओंकी नस्ल सुधारनेके लिये अच्छे-अच्छे साँड़ोंकी व्यवस्था करें। इन सब कामोंके लिये पुष्कल द्रव्यके साथ-साथ उत्साह एवं लगनकी आवश्यकता

है। धनकी सहायता तो हमारे धनी भाइयोंको विशेषरूपसे करनी चाहिये। वैश्योंके लिये तो गो-रक्षा एक मुख्य व्यवसाय और धर्म माना गया है। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।

(१८। ४४)

'खेती, गो-पालन तथा व्यापार—ये वैश्यके स्वाभाविक धर्म हैं।' कालके विपर्ययसे खेती और गो-पालन—इन दो कर्मोंको वैश्य-जातिने एक प्रकारसे छोड़ ही रखा है, व्यापार ही उनकी जीविकाका प्रधान साधन रह गया है। धार्मिक दृष्टिसे हमारे वैश्य भाइयोंको चाहिये कि व्यापारकी भाँति वे इन दो व्यवसायोंको भी अपनायें, जिससे इनकी भी उन्नति हो। हमारे नगरोंमें लोगोंको शुद्ध दूध आदि गव्य पदार्थ सुगमतासे मिल सकें, इसके लिये डेरी फार्मोंका बृहद्‌रूपमें आयोजन करें। धार्मिक दृष्टिके साथ-साथ व्यवसायकी दृष्टिसे भी जब हम गो-पालनके कार्यको हाथमें लेंगे, तभी

गौओंकी रक्षा और वृद्धि सम्भव है। गोधन तो हमारी प्रधान सम्पत्ति रही है। पूर्वकालमें धनवानोंकी हैसियत गौओंकी संख्यासे ही आँकी जाती थी। जिसके पास जितनी अधिक गौएँ होती थीं, वह उतना ही सम्पन्न माना जाता था। हमारे यहाँ भूमि और गौ—ये दो ही उत्पादनके प्रधान साधन माने गये हैं। भूमि और गौका परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। गौओंका पालन-पोषण बिना भूमिके नहीं हो सकता। गोचर-भूमियोंकी कमी इस समय गो-जातिके ह्रासका एक प्रधान कारण बन रही है। इसी प्रकार गौओंकी सहायताके बिना भूमि उपजाऊ नहीं हो सकती। आधुनिक विज्ञानके युगमें भी गोबरके समान और किसी खादका आविष्कार अबतक नहीं हो सका है। भूमिको जोतने तथा बराबर करनेके लिये भी बैल ही अधिक उपयोगमें आते हैं। संस्कृतमें भूमिका एक नाम 'गौ' भी है; क्योंकि पृथ्वी जब-जब अत्याचारोंके भारसे पीड़ित होती है, तब-तब वह गौका रूप धारण कर

ब्रह्माजीके सामने अपना दुखड़ा रोती है। इस प्रकार खेती और गो-पालनका परस्पर अविच्छेद्य सम्बन्ध है और एकको दूसरेकी सहायताकी बहुत अधिक आवश्यकता है। वैश्य भाइयोंसे प्रार्थना है कि वे इन दोनों व्यवसायोंको भी अपने हाथमें लेकर इन्हें समुन्नत बनावें।

सारांश यह है कि वर्तमान समय लोक-सेवाके लिये अत्यन्त उपयोगी है। हमारे धनिक-समाजको चाहिये कि इस सुनहरे अवसरसे लाभ उठाकर अपनी सम्पत्तिका सेवाके कार्योंमें अधिक-से-अधिक उपयोग करें। धनकी सार्थकता इसीमें है कि उसका जनता-जनार्दनकी सेवामें उपयोग किया जाय। यह मौका यदि हाथसे चला गया तो फिर सिवा पछतानेके और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। धनके साथ-साथ जीवनका भी कोई भरोसा नहीं है। आज है और कल नहीं। आज यदि हम चल बसे तो फिर यह धन हमारे किस काम आयेगा। इसलिये जीवन रहते इसे सत्कार्योंमें लगा

देना चाहिये। कहते हैं—'तुरत दान महापुण्य।' यही बात सभी उत्तम कार्योंके सम्बन्धमें लागू समझनी चाहिये। किसी भी अच्छे कामको कलके लिये नहीं छोड़ना चाहिये, तुरंत कर ही डालना चाहिये। इसीलिये किसी कविने कहा है—

काल करै सो आज कर आज करै सो अब।
पलमें परलै होयगी बहुरि करैगो कब॥

हमें ऐसे कई धनियोंका पता है, जिन्होंने परोपकारके लिये बड़ी-बड़ी स्कीमें सोच रखी थीं; परन्तु इच्छा रहते भी वे अपने उन स्कीमोंको पूरा नहीं कर पाये। वे अचानक मृत्युके गालमें चले गये। मृत्युपर किसीका वश नहीं चलता। वह किसीकी प्रतीक्षा नहीं करती। इसलिये शरीरमें जबतक श्वास है, तभीतक हमें इसका लाभ उठा लेना चाहिये। मरनेके बाद फिर हम कुछ नहीं कर सकेंगे। वर्तमान जीवनमें हम जो कुछ कमा लेंगे, वही आगे हमारे काम आयेगा। यदि जीवनभर हम पाप बटोरनेमें ही लगे रहे एवं न्याय-अन्याय, झूठ-

कपट, चोरी और बेईमानीसे अर्थसंग्रह करनेमें तथा इच्छानुसार भोग भोगनेमें ही हमने अपने कर्तव्यकी इतिश्री कर दी तो हमारा यह मनुष्य-जीवन व्यर्थ ही नहीं जायगा, आगेके लिये भी हम बहुत बड़े दुःखका सामान तैयार कर जायँगे।

जो बात व्यक्तिके लिये है, वही समष्टिके लिये भी समझनी चाहिये। आज जगत्में चारों ओर जो हाहाकार मचा हुआ है, उसका कारण क्या है? पाप ही दुःखका मूल है और धर्म सुखकी जड़ है। हम आज दुःखके बाह्य कारणोंका अनुसन्धान करके उन्हींके दूर करनेमें लगे हुए हैं; इसीसे हमारे दुःख कम होनेके बदले बढ़ते ही जा रहे हैं। जबतक व्याधिका निदान ठीक नहीं होगा, तबतक हम चाहे कितना ही उपचार क्यों न करें, उसमें हमें सफलता नहीं मिल सकती। व्याधिका नाश करनेके लिये हमें उसके मूलका नाश करना होगा। आज जगत् जिस व्याधिसे ग्रस्त है, उसका मूल पापोंकी वृद्धि है। जबतक पापोंकी बाढ़ नहीं रुकेगी, तबतक हम

कदापि व्याधिमुक्त नहीं हो सकते। अतः यदि हम अपनेको तथा संसारको सुखी देखना चाहते हैं तो हमें यथाशक्ति पापोंसे बचकर धर्म-संचय करना चाहिये। तभी हम और हमारे आस-पास के लोग सुखी रह सकेंगे। भगवान् व्यासने डंकेकी चोट कहा है—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

(महा० स्वर्गा० ५। ६२)

'मैं दोनों भुजाएँ उठा चिल्ला-चिल्लाकर कहता हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। भाइयो! धर्मसे ही धन और सुखकी प्राप्ति होती है; फिर क्यों नहीं धर्मका सेवन करते?' परन्तु हम इन त्रिकालदर्शी महर्षियोंकी हित भरी वाणीको सुनकर भी अनसुनी कर देते हैं। हम चाहते तो हैं सुख, पर चलते हैं दुःखके रास्ते। चाहते हैं दुःखसे छूटना, पर दुःखके हेतु पापको गले लगाये हुए हैं। महर्षि व्यास यही कहते हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

यह मनुष्य-देह हमें बड़े पुण्योंसे मिला है। इतना ही नहीं, भारतवर्ष-जैसा देश, हिंदू-धर्म-जैसा धर्म और कलियुग-जैसा युग—हमें प्राप्त हुआ है। महात्माओंने कलियुगको सभी युगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ बताया है। अन्य युगोंकी अपेक्षा इसमें कल्याण बहुत सुगमतासे हो सकता है। गोसाईं तुलसीदासजीने कहा है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

ऐसे अपूर्व संयोगको पाकर भी यदि हम सच्चे सुखसे वंचित रहे, अनित्य विषय-सुखोंमें ही रमा किये और पाप बटोरनेमें ही यदि हमने अपना अमूल्य जीवन खो दिया तो फिर हमसे बढ़कर मूर्ख और कृतघ्न कौन होगा? गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसे लोगोंको आत्महत्यारा कहा है। वे कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

सच्चा सुख केवल परमात्मामें है। इसलिये जो सच्चा सुख चाहते हैं, उन्हें अन्य सब ओरसे मुँह मोड़कर एकमात्र परमात्माकी ही शरण लेनी चाहिये— उन्हींमें मन लगाकर उन्हींकी भक्ति, उन्हींकी सेवा करनी चाहिये। जगत्‌को जनार्दन समझकर जगत्‌की सेवा करना भी भगवान्‌की ही सेवा है। फिर हमारे लिये सर्वत्र कल्याण-ही-कल्याण है। जो लोग परमात्मासे विमुख रहकर विषयोंमें ही मन लगाये रहते हैं, उन अज्ञानी जीवोंके लिये क्या कहा जाय। उनकी दशा तो उस अबोध विधवा बालिकाकी-सी है, जिसे पति-वियोगके दुःखका कुछ भी अनुभव नहीं होता। वह तो सदाकी भाँति खाने-पीने और खेलनेमें मस्त रहती है। उसे पता नहीं रहता कि आगे चलकर उसे जीवनमें कैसे-कैसे कष्टोंका सामना करना पड़ेगा, कैसी-कैसी विपत्तियाँ झेलनी होंगी। उसके माता-पिता, सगे-सम्बन्धी एवं अड़ोसी-

पड़ोसी उसकी दशापर तरस खाते हैं, रोते-कलपते हैं और उसके भावी कष्टोंका स्मरण करके बिसूरते हैं। परन्तु वह भोली-भाली बालिका उनके इस प्रकार रोने-धोनेका कारण नहीं समझ पाती। इसी प्रकार भगवद्विमुख जीवोंको देखकर संत-महात्मा उनकी दशापर तरस खाते हैं और उन्हें आनेवाली विपत्तिकी सूचना देते हैं; परन्तु फिर भी वे अज्ञानी जीव चेतते नहीं। अपने राग-रंग, भोग-विलासमें ही भूले रहते हैं। हमें चाहिये कि उन महात्मा पुरुषोंकी चेतावनीपर ध्यान देकर समय रहते-रहते चेत जायँ; नहीं तो फिर हमारी वही दशा होगी।

का बरषा सब कृषी सुखानें।
समय चुकें पुनि का पछितानें॥

□□

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?
1631	भगवान् कैसे मिलें ?
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं
1666	कल्याण कैसे हो ?
527	प्रेमयोगका तत्त्व
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा
528	ज्ञानयोगका तत्त्व
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय
298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य
243	परम साधन—भाग-१
244	,, ,, भाग-२
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति
579	अमूल्य समयका सदुपयोग
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)
247	,, ,, (भाग-२)
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति
1296	कर्णवासका सत्संग
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
249	शीघ्र कल्याणके सोपान
250	ईश्वर और संसार
519	अमूल्य शिक्षा
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
258	तत्त्वचिन्तामणि
257	परमानन्दकी खेती
260	समता अमृत और विषमता विष
259	भक्ति-भक्त-भगवान्
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
1530	आनन्द कैसे मिले ?
769	साधन नवनीत

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो?
1561	दुःखोंका नाश कैसे हो?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता

कोड	पुस्तक
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?
307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य